अंक : 2, जून 2018

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
जून 2018, अंक 2

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004,
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512,
+91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
पूर्णिमा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
अंशुमान श्रीवास्तव

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राज़ीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–(www.amefound.org)

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 40 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाईट देखें–(www.geagindia.org)

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

स्थानीय अभ्यासों से पशुधन नस्लों का संरक्षण

पी. विवेकानन्दन

विभिन्न कारणों से पशुधन की स्थानीय नस्लों का गम्भीर नुकसान हो रहा है। लेकिन अभी भी पशुपालन पर निर्भर स्थानीय समुदाय में ऐसे बहुत से उत्साही लोग हैं, जो स्थानीय नस्लों का संरक्षण कर रहे हैं और इन्हें किसी भी परिस्थिति में रहने हेतु सक्षम बना रहे हैं। इस समय सरकार एवं नीति नियन्ताओं द्वारा स्थाई पशुधन विकास के लिए संरक्षण अभ्यासों की पहचान करने हेतु पहल तथा सहयोग करने की आवश्यकता है।

बेहतर मृदा स्वास्थ्य के लिए पशुशाला प्रबन्धन

सुजन अमगई व सालिक राम पौडेल

छोटे–छोटे कार्यों का भी बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। जानवरों के रहने के स्थान को उन्नत बनाने के लिए सरकार की तरफ से दी गयी छोटी सी मदद ने नेपाल के सिन्धौली जिले में किसानों की खेती करने का तरीका ही बदल दिया।

जायद की फसलों में जैव उर्वरकों के उपयोग से लाभ

डा0 अतीक अहमद, डा0 अरविन्द कुमार गुप्ता, डा0 देव कुमार, अंशुमान श्रीवास्तव एवं शिव बहादुर

खेती एवं उससे जुड़ी आजीविका में स्थाईत्व लाने के लिए जैविक खेती एक बेहतर विकल्प है। अगर इसे बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया जाये और जैविक उत्पादों के लिए बाजार उपलब्ध कराया जाये तो निश्चित तौर पर छोटे व सीमान्त किसानों का खेती से पुनः जुड़ाव स्थापित होगा और उनकी आजीविका में स्थाईत्व आयेगा। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए राज्य एवं राष्ट्रीय सरकारों द्वारा कृषि विभाग की मदद से वर्ष 2001 से निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं।

कीचड़ में केकड़ा की खेती : एक अनुकूलन रणनीति

कृष्ण चन्द्र साहू

ओडिशा के तटीय गांव जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाली प्राकृतिक आपदाओं से अत्यधिक संवेदनशील हैं। विशेषकर कृषि एवं उससे जुड़े क्षेत्रों में कार्य करने वाले स्थानीय लोगों की आजीविका गम्भीर रूप से प्रभावित हो रही है। धरा और आईजीएसएसएस के निर्देशन में ओडिशा के केन्द्रापदा जिले के राजनगर विकासखण्ड के तटीय क्षेत्रों में रहने वाले ग्रामवासी जलवायु परिवर्तन और आपदा जोखिमों के सन्दर्भ में आजीविका के विकल्पों के तौर पर कीचड़ में केकड़ा की खेती करने लगे हैं।

स्थानीय समुदाय, पशुधन और आजीविका

अमनदीप सिंह एवं प्रणव कुमार

हिमालयी क्षेत्र में रहने वाली पारम्परिक बकरवाल समुदायों की आजीविका मुख्य तौर पर बकरियों पर निर्भर करती है। उनके द्वारा किये गये बकरी पालन अभ्यास न केवल उनकी आजीविका को स्थाई बनाती है, वरन् वे अपने आस–पास की पारिस्थितिकी को भी स्थाईत्व प्रदान कर रहे हैं। समय बदलने के साथ, ये स्थानीय समुदाय अपने आप को समय के साथ बदल रहे हैं और बदलती परिस्थितियों के हिसाब से यथोचित तकनीक को अपना रहे हैं।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, जून 2018

5 स्थानीय अभ्यासों से पशुधन नस्लों का संरक्षण
पी. विवेकानन्दन

9 बेहतर मृदा स्वास्थ्य के लिए पशुशाला प्रबन्धन
सुजन अमगई व सालिक राम पौडेल

11 जायद की फसलों में जैव उर्वरकों के उपयोग से लाभ
डा0 अतीक अहमद, डा0 अरविन्द कुमार गुप्ता, डा0 देव कुमार, अंशुमान श्रीवास्तव एवं शिव बहादुर

14 कीचड़ में केकड़ा की खेती : एक अनुकूलन रणनीति
कृष्ण चन्द्र साहू

16 स्थानीय समुदाय, पशुधन और आजीविका
अमनदीप सिंह एवं प्रणव कुमार

18 फसल नियोजन : जलवायु संवेदी खाद्य प्रणाली हेतु.....
अनुराधा फदतारे

फसल नियोजन : जलवायु संवेदी खाद्य प्रणाली हेतु.....

अनुराधा फदतारे

स्थान विशेष के उपर फसलों की उपज की अत्यधिक निर्भरता होती है। इसके साथ ही अन्य विभिन्न कारक जैसे जलवायु, प्राकृतिक संसाधन, निवेशों तक पहुंच, जानकारी आदि भी फसलों की उपज को प्रमुख रूप से प्रभावित करते हैं। जलवायु संवेदी खाद्य प्रणाली तैयार करने हेतु प्रक्षेत्र स्तर पर फसल नियोजन एक दीर्घकालिक तरीका है। अपनी फसल उत्पादनों का नियोजन करते हुए महाराष्ट्र के किसान अच्छी फसल लेने में सक्षम हो रहे हैं जिससे वे अपनी खाद्य एवं पोषण आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

यह अंक...

सम्पादकीय,

मानसून के आगमन की प्रतीक्षा के साथ ही लीज़ा जून, 2018 अंक के लिए पाठकों की प्रतीक्षा का अन्त करते हुए पत्रिका आपके समक्ष प्रस्तुत हे। गर्मियों की चिलचिलाती धूप और खेती, पशुधन एवं आजीविका का प्रबन्धन किसानों के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। मई–जून की प्रखर गर्मी मृदा, पशु व मानव तीनों के स्वास्थ्य के लिए एक गम्भीर चुनौती है। ऐसे में पशुशाला प्रबन्धन, मृदा में नमी व पोषण बनाये रखने तथा मानव के लिए पोषणयुक्त आहार की उपलब्धता से सम्बन्धित जानकारियां व अनुभव किसानों के लिए काफी महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

उपरोक्त विचारों के सापेक्ष पत्रिका का पहला लेख पी. विवेकानन्दन द्वारा लिखित ''स्थानीय अभ्यासों से पशुधन नस्लों का संरक्षण'' है। लेख के माध्यम से लेखक ने स्थानीय जलवायु को ध्यान में रखते हुए पशुओं की परम्परागत नस्लों के संरक्षण के स्थानीय अभ्यासों को साझा किया है। लेख में इस बात पर भी बल दिया गया है कि स्थानीय स्तर पर नस्ल संरक्षण के इन छोटे–छोटे उपायों/अभ्यासों को संज्ञान में लेते हुए उसे अपनी योजनाओं व नीतियों में शामिल करने की आवश्यकता है। ''बेहतर मृदा स्वास्थ्य के लिए पशुशाला प्रबन्धन'' नामक दूसरे लेख में लेखकद्वय सुजन अमगई तथा सालिक राम पौडेल ने स्पष्ट किया है कि नेपाल में स्थानीय प्रशासन के छोटे–छोटे सहयोग से किसान अपने पशुओं एवं उनके रहने के स्थान को बेहतर बना रहे हैं और पशुपालन के माध्यम से अपनी आजीविका को उन्नत कर रहे हैं। लेख में यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि यदि सरकारें ध्यान दें तो छोटे अभ्यासों से भी बड़ा प्रभाव दिख सकता है।

''जायद की फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग से लाभ'' एक ज्ञानवर्धक लेख है, जिसे कृषि वैज्ञानिकों एवं शोध छात्रों क्रमशः डॉ0 अतीक अहमद, डॉ0 अरविन्द कुमार गुप्ता, डॉ0 देव कुमार, अंशुमान श्रीवास्तव एवं शिव बहादुर ने लिखा है। इस लेख के माध्यम से लेखकगण ने जायद फसलों की वैज्ञानिक खेती के ऊपर किसानों को जानकारी देने का प्रयास किया है, जो छोटे–मझोले व महिला किसानों की आवश्यकता भी है, क्योंकि कम संसाधन वाले इन किसानों की पहुंच सूचना एवं जानकारियों तक आसानी से नहीं हो पाती है। पत्रिका का चौथा लेख क्रुश्न चन्दर साहू द्वारा लिखित ''कीचड़ में केकड़ा की खेती : एक अनुकूलन रणनीति'' है। यह लेख जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने हेतु उड़ीसा के तटीय क्षेत्र के किसानों द्वारा अपनायी जा रही गतिविधि के ऊपर आधारित है, जिसमें आपदा जोखिमों के सन्दर्भ में उनके द्वारा कीचड़ में केकड़ा पालन की गतिविधि को सविस्तार समझाया गया है।

पत्रिका का अन्तिम लेख अनुरूद्धा पधात्रे द्वारा लिखित है। ''फसल नियोजन : जलवायु संवेदी खाद्य प्रणाली हेतु एक उपकरण'' शीर्षक से लिखित इस लेख में लेखक ने जलवायु परिवर्तन एवं अन्य कृषिगत चुनौतियों से निपटने हेतु फसल नियोजन एवं तद्नुरूप क्रियान्वयन की महत्ता एवं आवश्यकता पर जोर दिया है।

अन्त में, यह उल्लिखित करना आवश्यक होगा कि पत्रिका में दिये गये लेख मुख्य रूप से देश एवं विदेश में खेती के सन्दर्भ में किये जा रहे प्रयास हैं, जिन्हें बड़े पैमाने पर प्रसारित करने के उद्देश्य से प्रकाशित किया जा रहा है। पत्रिका में दिये गये लेखों एवं उनकी उपयोगिता पर आपके सुझावों की प्रतीक्षा में.....

• **सम्पादक मण्डल**

स्थानीय अभ्यासों से पशुधन नस्लों का संरक्षण

पी. विवेकानन्दन

विभिन्न कारणों से पशुधन की स्थानीय नस्लों का गम्भीर नुकसान हो रहा है। लेकिन अभी भी पशुपालन पर निर्भर स्थानीय समुदाय में ऐसे बहुत से उत्साही लोग हैं, जो स्थानीय नस्लों का संरक्षण कर रहे हैं और इन्हें किसी भी परिस्थिति में रहने हेतु सक्षम बना रहे हैं। इस समय सरकार एवं नीति नियन्ताओं द्वारा स्थाई पशुधन विकास के लिए संरक्षण अभ्यासों की पहचान करने हेतु पहल तथा सहयोग करने की आवश्यकता है।

भारत बड़ी संख्या में स्थानीय पशुधन नस्लों का घर है, जिसे चरवाहा समुदायों ने पोषित किया है। कश्मीर के बकरवाल, उत्तराखण्ड के वन गुज्जर, हिमाचल प्रदेश की गडी, राजस्थान के राइका गुज्जर, सिन्धी मुस्लिम एवं राजपूत, गुजरात के मालधारी, महाराष्ट्र एवं कर्नाटक की गोवाली एवं ढांगर, तमिलनाडु की टोडा, कुरूम्बर, कोनार एवं बरगुर आदि इन चरवाहा समुदायों में से कुछ हैं। हमारे देश में 151 नस्ल पंजीकृत हैं। अभी भी बहुत से ऐसे नस्ल हैं, जिनका वर्णन किये जाने की आवश्यकता है।

रामास्वामी परिवार पिछले 75 वर्षों से उम्बलाचेरी गायों की नस्ल का संरक्षण कर रहे हैं।

फोटो : लेखक

भारत में सामूहिक जमीनों, चारागाहों, तालाबों और जंगलों के विलुप्त होने के साथ ही स्थानीय पशुधन प्रजातियों की संख्या में तेजी से गिरावट आयी है। सामान्य तौर पर पशुधन तथा विशेषकर स्थानीय नस्लों की कमी के पीछे बहुत से कारणों का योगदान है। तकनीकी क्रान्ति की खोज के साथ ही खेती में जानवरों का स्थान ट्रैक्टरों तथा अन्य ऊर्जाचलित उपकरणों ने ले लिया और पशुधन अनावश्यक होते गये। दूसरी तरफ खेती में लाभ कम होने के कारण गांव के युवा खेती एवं पशुपालन छोड़कर आजीविका के अन्य विकल्पों की तलाश में बाहर जाने लगे। ग्रामीण संकट को बढ़ाने में सरकार ने भी अपना योगदान दिया। मनरेगा इसका एक बेहतर उदाहरण हो सकता है। इस कार्यक्रम ने पहले से ही गांव में कम मिलने वाले मजदूरों की कमी को और बढ़ाया, जिससे छोटे किसानों की खेती एवं पशुपालन दोनों पर गम्भीर प्रभाव पड़ा।

इन परिस्थितियों के बावजूद कुछ स्थानीय समुदायों और स्वयंसेवी संगठनों द्वारा स्थाई पशुधन विकास एवं स्थानीय नस्लों के संरक्षण हेतु कुछ अच्छे पहले किये गये हैं। ''सेवा'' एक ऐसा ही स्वैच्छिक संगठन है, जो पशुओं के परम्परागत नस्लों को संरक्षित करने के कार्य में सक्रियता से संलग्न है। यह संगठन नस्ल संरक्षण में लगे व्यक्तियों की पहचान करता है, उनके प्रयासों को दस्तावेजित करता है और उन्हें ''नस्ल उद्धारकर्ता पुरस्कार'' से सम्मानित कर पहचान दिलाता है। पहचान दिलाने की इस पहल का आरम्भ वर्ष 2009 में राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण और राष्ट्रीय पशु नस्ल शोध संस्थान व मधुमक्खी पालन नेटवर्क के सहयोग से किया गया।

पिछले 7 वर्षों में 150 से भी अधिक केसेज को दस्तावेजित किया जा चुका है। एक स्थानीय पशु नस्ल उम्बलाचेरी को संरक्षित करने के लिए वर्ष 2017 में ''नस्ल उद्धारकर्ता पुरस्कार'' से सम्मानित श्री रामास्वामी की कहानी यहां दी जा रही है।

स्थानीय जानवरों के कई फायदे

74 वर्षीय श्री जी. रामास्वामी एक परम्परागत पशुपालक परिवार से ताल्लुक रखते हैं। उनका परिवार पशुपालन पर पूर्णतया निर्भर करता है। अपने पिता के सानिन्ध्य में पशुपालन का काम वह बचपन से ही करते आ रहे हैं।

रामास्वामी एवं उनका परिवार पिछले 75 वर्षों से उम्बलाचेरी नस्ल के जानवर का संरक्षण कर रहा है। उनके दादा श्री सुभाई पिल्लई ने उम्बलाचेरी जानवर की उप नस्ल अट्टाकुरीमादू को रू0 80.00 में एक चरवाहा महिला से खरीदा था। उम्बलाचेरी नस्ल की मुख्य विशेषता यह होती है कि इस नस्ल के जानवरों के माथे पर सफेद रंग की पट्टी होती है जबकि पूरे शरीर का रंग गहरा भूरा होता है। इसके पैरों और पूंछ पर सफेद निशान होते हैं। शारीरिक बनावट के आधार पर इसकी मुख्य चार प्रजातियां– अट्टाकुरी, सूर्यकुलाथू मादू, गनपथियन मादू एवं वीना मादू होती हैं। बैलों की शुद्धता बनाये रखकर इन उप नस्लों की शुद्धता को बनाये रखते हैं।

उम्बलाचेरी नस्ल की गाय 9–12 थनों की होती है और एक बार ब्याने के चार महीने के बाद गाय संसर्ग के लिए तैयार होगी। दूध का रंग पीला होने पर दूध दूहना बन्द कर दिया जाता है। बछवा–बछिया को अधिकतम दूध चूसने दिया जाता है। तीसरे वर्ष में चार दांत आ जाने के बाद बछवा बैल बन जाता है और तब उन्हें संसर्ग के लिए

नस्ल बढ़ने के लिए निर्धारित किये गये कारक :

- चुनिन्दा प्रजनन एवं प्रबन्धन से उत्पादकता में वृद्धि।
- जानवरों से प्राप्त उत्पादों जैसे– दूध, खाद, मांस के साथ ही उनके बच्चों को बेचने से आय अर्जन की संभावना।
- कम लागत वाले जानवरों को सघन उत्पादन प्रणाली के तहत् शून्य लागत पर पालना।
- मिश्रित खेती के साथ पशुधन को एकीकृत करना, जिससे एक तरफ बाहरी निवेश घटेगा तो दूसरी तरफ किसानों की आय भी सुरक्षित होगी।

हिमाचल प्रदेश के उत्तरी हिमालयन क्षेत्र में अपने 70 बेलाही गायों के साथ मानसिंह

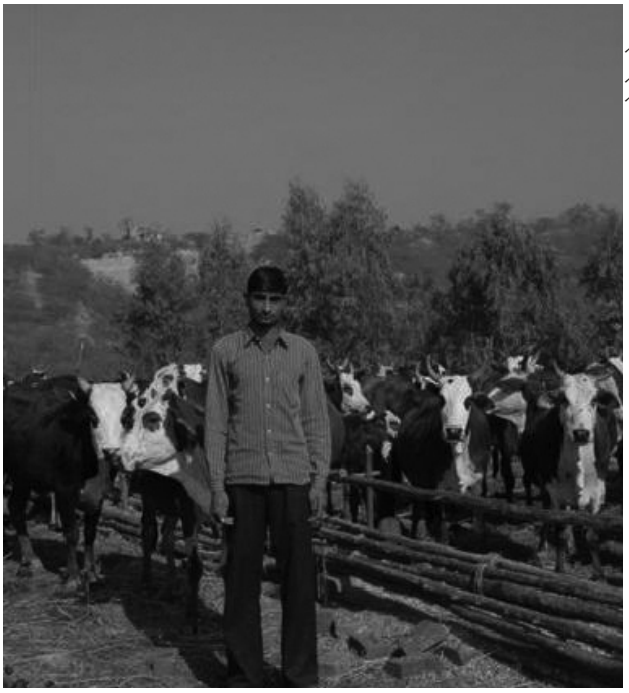

फोटो : लेखक

तैयार किया जाता है। एक बैल 10–12 वर्ष तक संसर्ग कर सकता है। पहले जब गीली भूमि की जुताई हल से की जाती थी, उस समय बैलों की काफी मांग थी। परन्तु आज ऐसा न होने के कारण सिर्फ नस्ल सुधार हेतु इनकी व्यापक देख–रेख की जाती है।

वर्तमान में परिवार 34 गायों, 14 बछवा–बछिया तथा 3 बैलों सहित कुल 51 जानवरों की देख–भाल करता है। पशुपालन से अथवा जानवरों की देख–भाल से परिवार की बहुत सी आवश्यकता पूरी होती है। उदाहरणस्वरूप लगभग डेढ़ से चार लीटर दूध परिवार स्वयं उपभोग करता है। वे बछवा–बछिया को बेचकर आमदनी प्राप्त करते हैं। प्रतिवर्ष वे बछवा–बछिया के 5–6 जोड़ों को बेचते हैं। प्रत्येक की कीमत रू0 12000.00 – 15000.00 के बीच होती है। जानवरों से प्राप्त अपशिष्टों से खाद तैयार कर अपने खेत में उपयोग करते हैं। लगभग 30 गाड़ी प्रति एकड़ खाद अपने खेतों में डालते हैं जो सामान्य से तीन गुना अधिक होता है। इसके चलते उनके खेतों में उपयोग की जाने वाली रसायनिक खाद की मात्रा आधी हो गयी है। जैविक खाद का उपयोग करने से उनके फसलों की उपज भी बढ़ी है। उनके खेतों में धान की औसत उपज 45 बैग प्रति एकड़ होती है। जबकि अन्य दूसरे खेतों में 30 बैग प्रति एकड़ की दर से धान की उपज होती है। इन लाभों के अतिरिक्त, जानवर सामाजिक और सांस्कृतिक लाभ भी प्रदान करते हैं। परिवार में अपनी बेटी की शादी के बाद बेटी की ससुराल में दूध देने वाली गायों को भेजने की प्रथा है ताकि वहां के छोटे बच्चों को दूध मिल सके।

कुछ अन्य विजेता

1. बेलाही नस्ल की गाय को रखने वाले पशुपालक एक विशिष्ट गुज्जर समुदाय से सम्बद्ध होते हैं। वे भूमिहीन होते हैं और उनकी निर्भरता केवल पशुपालन पर ही होती है। बेलाही, जानवरों की एक प्रवासी नस्ल है, जो शुद्ध रूप से हिमालय की उपरी पहाड़ियों में चराई पर प्रबन्धित की जाती है। यह प्रबन्धन के न्यूनतम निवेश और अधिकतम प्राप्ति की प्रणाली पर प्रबन्धित की जाती है। सामान्यतः एक परिवार एक झुण्ड में 4–5 दुधारू गायों को रखते हैं। एक व्यक्ति का पूरा समय इन जानवरों की देख–रेख में लगता है। औसतन प्रतिदिन 4–5 लीटर दूध मिलता है। इस दूध में वसा का प्रतिशत 5.5 के लगभग होता है जो संकर प्रजाति की गायों से प्राप्त दूध (4 प्रतिशत) की अपेक्षा अधिक उच्च होता है। रू0 30.00 प्रति लीटर की दर से दूध बिकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में जुताई एवं अन्य कृषिगत कार्यों के लिए बेलाही नस्ल के बैल काफी कीमती हैं। हिमाचल प्रदेश में सुन्दरनगर में लगने वाले पशु मेला में बेलाही नस्ल के एक वर्ष वाले दो बैल आसानी से रू0 25000.00 से 30000.00 के बीच बिक जाते हैं। चूंकि ये लोग भूमिहीन होते हैं, इसलिए ये जानवरों की खाद को बेचकर रू0 3000.00 से 5000.00 के बीच आय प्राप्त कर लेते हैं। इनकी आमदनी परिवार में पले पशुओं की संख्या पर निर्भर करती हैं। ये अपने पशुओं को 2–3 माह के लिए खुले मैदान में छोड़ देते हैं, जहां पशु स्वछन्द रूप से घास चरते हैं। इस कारण इनका रख–रखाव खर्च भी काफी कम होता है। उस समय न तो इन्हें कोई पूरक आहार दिया जाता है और न ही दवाओं पर कोई खर्च होता है। एक वर्ष में प्रति जानवर मुश्किल से रू0 10.00 का खर्च आता है। लेकिन इधर से उधर ले जाने में गायों के गायब हो जाने व अज्ञात कारणों से मर जाने के कारण प्रतिवर्ष 1–2 जानवरों का नुकसान भी हो जाता है।

फोटो : लेखक

रोजा 50 मालाबारी बकरियों को पालकर जीवन यापन करती हैं।

2. केरल के थालेसरी गांव की रहने वाली एक खेतिहर मजदूर श्रीमती रोज़ा ने 50 मालाबारी बकरियों का पालन किया है। इन बकरियों का दूध, लेंड़ी से तैयार खाद एवं बकरियों के बच्चों को बेचने से उन्हें प्रतिमाह रू0 15000.00 की आय होती है।

3. तमिलनाडु के तिरूनेल्वेली जिले के अलवान्थनकुलम गांव के रहने वाले श्री वी. जान के पास लाल रंग की छेवादू प्रजाति की 150 भेड़ें हैं। इस प्रजाति के रैम (Ram) का उपयोग धार्मिक कार्यों के लिए होता है और यही कारण है कि वे छेवादू भेड़ों की रैम किसानों को बेचकर अधिक आमदनी प्राप्त करते हैं।

4. श्री पौलराज के पास वेम्बुर प्रजाति की 60 भेड़ें हैं, जो तमिलनाडु के थूथुकुडी जिले के अर्ध शुष्क व काली मिट्टी वाले क्षेत्र में तेजी से वृद्धि करती हैं। वे इतने बड़े झुण्ड का प्रबन्धन आसानी से करते हैं।

5. तमिलनाडु की नीलगिरी पहाड़ियों में रहने वाले टोडा आदिवासियों की मुख्य आजीविका टोडा भैंसों पर है, जो 1500 मीटर की ऊँचाई पर बसे नीलगिरी पर भी जीवित रह सकती हैं। नीलगिरी के गडीमुण्ड के आदिवासी किसान श्री रंजीत ने इन भैंसों का पालन किया है और उनका दूध बेचकर आय प्राप्त करते हैं।

ये कुछ उन ''सकारात्मक सोच'' रखने वाले लोगों की कहानियां हैं, जो देश के अन्य भागों में बदलाव की दिशा दे सकते हैं। स्थानीय नस्लों को संरक्षित करने वाले अन्य लोगों के साथ इन अच्छे अनुभवों को साझा करने की आवश्यकता है। यह वास्तव में एक शुरूआत है और यह उम्मीद की जाती है कि सरकार, वैज्ञानिक एवं नीति नियन्ता योजना एवं नीति बनाते समय स्थानीय समुदायों/पशुपालकों को शामिल करेंगे और घरेलू पशु विविधता के संरक्षक के रूप में उनकी भूमिका तथा उनके द्वारा किये गये प्रयासों को मान्यता देते हुए उसका प्रसार करेंगे।

सन्दर्भ :

1. डॉ0 विकास बोहरा, वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशु आनुवांशिक एवं प्रजनन) आईसीएआर– पशु आनुवंशिक संसाधनों हेतु राष्ट्रीय ब्यूरो, करनाल 132001, हरियाणा, भारत द्वारा बेलाही पशुपालकों के विषय में लिखित ई–मेल।
2. नस्ल उद्धारकर्ता पुरस्कार (2009–2016) : पशुपालकों की प्रोफाइल, तमिलनाडु, के मदुरै में स्थित स्वैच्छिक संगठन 'सेवा' द्वारा 7 पुस्तकें प्रकाशित। (वेबसाइट www.sevango.in) पर भी देखें।

■

पी. विवेकानन्दन
सेवा
45, टी.पी.एम. नगर, विराटीपथु,
मदुरै– 625 010
ई–मेल : vivekseva@gmail.com

Ecological Livestock
LEISA INDIA, Vol. 19, No.3, Sept. 2017

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2001-2017

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V. 14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V. 15, No.2, 2013- Farmers and market
V. 15, No.3, 2013- Education for change
V. 15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V. 16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V. 16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V. 16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V. 16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

V. 17, No. 1, 2015- Soils for life
V. 17, No. 2, 2015- Rural-urban linkages
V. 17, No. 3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V. 17, No. 4, 2015- Women forging change

V. 18, No. 1, 2016- Co-creation to knowledge
V. 18, No. 2, 2016- Valuing underutilised crops
V. 18, No. 3, 2016- Agroecology-Measurable and sustainable
V. 18, No. 4, 2016- Stakeholders in agroecology

V. 19, No. 1, 2017- Food Sovereignty
V. 19, No. 2, 2017- Climate Change and Ecological appraches
V. 19, No. 3, 2017- Ecological Livestock
V. 19, No. 4, 2017- Millet Farming Systems

बेहतर मृदा स्वास्थ्य के लिए पशुशाला प्रबन्धन

सुजन अमगई व सालिक राम पौडेल

छोटे–छोटे कार्यों का भी बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। जानवरों के रहने के स्थान को उन्नत बनाने के लिए सरकार की तरफ से दी गयी छोटी सी मदद ने नेपाल के सिन्धौली जिले में किसानों ने खेती करने की तरीका ही बदल दिया।

नेपाल के विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में जहां किसान अपने बिखरे भूखण्डों पर बहुत मुश्किल से खेती कर पाते हैं, वहां पर लम्बे समय से लोगों की आजीविका का आधार खेती ही है। कृषिगत उत्पादन को बढ़ाने के लिए सिंचाई में वृद्धि, रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग, नये–नये औजारों तथा उच्च उत्पादक क्षमता वाले नवीन बीजों को सामने लाना एवं ऋण का प्रावधान करना आदि बहुत सी सरकारी योजनाएं लागू की गयी हैं। तथापि, रसायनिक उर्वरकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग, फसल चक्रीकरण को न अपनाने व जैविक खाद का न्यूनतम उपयोग करने के कारण मृदा स्वास्थ्य में तेजी से ह्रास हुआ है और इससे खाद्य सुरक्षा प्रभावित हो रही है।

जैविक खाद उत्पादन को बढ़ावा देने तथा महंगी रसायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करते हुए खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने के लक्ष्य के साथ, मृदा प्रबन्धन निदेशालय ने जिला कृषि विकास कार्यालयों के समन्वयन में बहुत से कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया। इनमें वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन, पशुशाला प्रबन्धन, जैविक खाद उद्योग को स्थापित करने और कृषि विभाग के अन्तर्गत अनुदानित मूल्य पर किसानों को जैविक खाद उपलब्ध कराना आदि कार्यक्रम प्रमुख हैं।

पशुशाला उन्नत कार्यक्रम

पारम्परिक तौर पर, किसान पशुओं को बहुत बड़े झुण्ड में रखते थे और चारागाहों पर झुण्ड में ही चरने के लिए भेजते थे। रोजगार के लिए युवाओं द्वारा पलायन करने की प्रवृत्ति बढ़ने के साथ ही जानवरों का प्रबन्धन करने के लिए लोगों की कमी होने लगी। धीरे–धीरे, ग्रामीण समुदायों में बड़े समूहों में जानवरों की देख–भाल करना और उनके गोबर व मूत्र का प्रबन्धन करना पहले की अपेक्षा अधिक चुनौती पूर्ण हो गया। इस प्रकार क्रमशः जानवर झुण्ड से पशुशाला में सिमटने लगे। पशुशाला की खराब गुणवत्ता के कारण न केवल अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों को बढ़ावा मिला, वरन् जानवरों के मूत्र और गोबर जैसे समृद्ध संसाधन भी नष्ट होने लगे। पशुशाला की अनुचित बनावट व निर्माण के कारण पानी और पशु मूत्र का बहाव जानवरों की तरफ होने तथा एक ही स्थान पर देर तक जमे रहने से मूत्र एवं गोबर की गुणवत्ता में भी गिरावट आयी है। आगे चलकर इससे बनने वाली खाद की गुणवत्ता भी न्यून स्तर की होने लगी। साथ ही इस तरीके से खाद उत्पादित करने से बड़ी मात्रा में पोषण तत्वों का भी ह्रास होता है।

परम्परागत ढंग से प्रबन्धित पशुशाला

परियोजना क्रियान्वयन के बाद उन्नत पशुशाला

इन तथ्यों को समझते हुए कृषि विभाग ने वर्ष 2013–14 में एक मिशन कार्यक्रम के तहत् पशुशाला उन्नयन हेतु पहल करना प्रारम्भ किया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य पशुशाला के फर्श को उन्नत बनाते हुए जानवरों के गोबर एवं मूत्र का प्रभावी प्रबन्धन था। ताकि घर पर बनी बेहतर गुणवत्ता वाली खाद एवं गौ मूत्र का उपयोग करते हुए पौधों को सुरक्षित तथा मृदा स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सके।

जिला कृषि विभाग के अधिकारियों के समन्वयन में जिले के किसान समूहों अथवा सहकारी समितियों को पशुशाला उन्नत करने के साथ ही पशुओं के मूत्र को एकत्रित करने के लिए टैंक एवं गोबर के लिए छायादार स्थल निर्मित करने में सहयोग किया गया। प्रति परिवार रू0 5200/– का अनुदान दिया गया। वर्ष 2015–16 में लगभग 33746 उन्नत पशुशाला का निर्माण किया गया, जिसके कारण इससे जुड़े हुए 33746 परिवार लाभान्वित हुए। जानवरों से प्राप्त अपशिष्टों के समुचित प्रबन्धन तथा उससे तैयार खाद को खेत में डालने से एक तरफ तो मृदा स्वास्थ्य बेहतर हुआ तो दूसरी तरफ फसल की उत्पादकता भी बढ़ी।

सिन्धौली जिले की कहानी

नेपाल के 75 जिलों में से एक सिन्धौली जिला प्रान्त सं0 3 का एक भाग है। 2,491 वर्ग किमी0 में विस्तारित इस जिले का जिला मुख्यालय सिन्धौली मधी है। वर्ष 2011 में इस जिले की जनसंख्या 296192 थी। यह नेपाल के मध्य पहाड़ी जिलों में से एक है और यहां पर आमदनी का मुख्य स्रोत खेती है।

जिला कृषि विभाग अधिकारी सिन्धौली ने वर्ष 2014–15 में मृदा प्रबन्धन निदेशालय के सहयोग से पशुशाला उन्नयन कार्यक्रम की शुरूआत की। कार्यक्रम के पहले, किसान खाद बनाने की परम्परागत तकनीक का इस्तेमाल करते थे। इसके अन्तर्गत वे छोटे–छोटे ढेरों में अव्यवस्थित तरीके से गोबर को एकत्रित करते थे और उसे धूप एवं बारिश में खुला ही छोड़ देते थे। जानवरों के मूत्र को एकत्रित नहीं करते थे और सामान्यतः यह पशुशाला की फर्श पर फैला रहता था। किसान उन्नत पशुशाला प्रबन्धन के लाभों से परिचित नहीं थे।

सर्वप्रथम गांवों में एक समूह का चयन किया गया और घर पर तैयार खाद के उन्नत प्रबन्धन अभ्यासों पर वहां के किसानों का उन्मुखीकरण किया गया। उन्हें यह भी बताया गया कि पशुशाला से निकले अपशिष्टों का प्रबन्धन यदि गलत तरीके से किया जाये तो उसके बहुत से पोषण तत्व नष्ट हो जाते हैं। जानवरों के मूत्र संग्रह हेतु नाली सहित टैंक का निर्माण, पशुशाला के फर्श को पक्का करने तथा गोबर एकत्र करने हेतु पशुशाला के साथ एक स्थाई गढ्ढे का निर्माण करने हेतु प्रत्येक चयनित किसान को सहायता प्रदान की गयी। इस उन्नत अभ्यास को देखकर गांव के अन्य बहुत से किसानों ने इसे अपनाया और एक साधारण सी गतिविधि के कारण गांव में बहुत से प्रभाव देखने को मिले।

> बड़ी संख्या में पशुपालन और उनके अपशिष्टों का प्रबन्धन ग्रामीण समुदायों के सामने एक बड़ी चुनौती है।

सिन्धौली जिले के वीडीसी–5 रानीचौरी के एक किसान श्री बुधिराज श्रेष्ठ ने अपनी पशुशाला को उन्नत किया है। उन्नत अभ्यासों पर जागरूकता बढ़ाने के साथ–साथ उन्होंने अपनी फसलों में घर पर तैयार खाद एवं पशु मूत्र का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने देखा कि मृदा स्वास्थ्य उन्नत हो रही है और फसल स्वस्थ दिखने लगे हैं। साथ ही उन्हें बेहतर उपज भी मिलने लगी है।

सन्दर्भ

डीएडीओ, **वार्षिक प्रगति रिपोर्ट – 2014–15**, जिला कृषि विकास कार्यालय, सिन्धौली, नेपाल

जैसी, एस.एन., एन. महतो, आर. मननधर एवं के.एच. मैस्के, **किसानों के स्तर पर खाद के उपयोग पर अध्ययन**, 1997, वार्षिक रिपोर्ट 20.53154 में प्रकाशित एक रिपोर्ट, मृदा परीक्षण एवं सेवा प्रदाता अनुभाग, कृषि विभाग।

एमओएडी, **वार्षिक प्रगति रिपोर्ट– 2015–16**, कृषिगत विकास मंत्रालय, सिंहा दरबार, काठमाण्डू, नेपाल

एमओएडी, **नेपाली कृषि पर सांख्यिकी सूचनाएं, 2015–16**, कृषिगत विकास मंत्रालय, कृषि व्यापार प्रोत्साहन एवं सांख्यिकी डिवीजन, सिंहा दरबार, काठमाण्डू, नेपाल

शेरचन, डी.पी. एवं जी.बी. गुरूंग, **पहाड़ी कृषिगत उत्पादन प्रणाली के स्थाईत्व के लिए कम्पोस्ट के उत्पादन एवं प्रबन्धन की तकनीक**, 1996, पीएसी तकनीकी पेपर नं0 171, पचरीबस कृषिगत केन्द्र, नेपाल

एसएमडी, **वार्षिक प्रगति रिपोर्ट– 2015–16**, मृदा प्रबन्धन निदेशालय, हरिहर भवन, ललितपुर, नेपाल

आर्गेनिक फार्मिंग : मेन्योर्स, http://agritech.tnau.ac.in/org_farm/orgfarm_manure.html

■

सुजन अमगई
वरिष्ठ पौध सुरक्षा अधिकारी
कृषि विभाग, हरिहर भवन, ललितपुर, नेपाल

सालिक राम पौडेल
कृषि प्रसार अधिकारी
कृषि विभाग, हरिहर भवन, ललितपुर, नेपाल

Ecological Livestock
LEISA INDIA, Vol. 19, No.3, Sept. 2017

जायद की फसलों में जैव उर्वरकों के उपयोग से लाभ

डा० अतीक अहमद, डा० अरविन्द कुमार गुप्ता, डा० देव कुमार, अंशुमान श्रीवास्तव एवं शिव बहादुर

खेती एवं उससे जुड़ी आजीविका में स्थाईत्व लाने के लिए जैविक खेती एक बेहतर विकल्प है। अगर इसे बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया जाये और जैविक उत्पादों के लिए बाजार उपलब्ध कराया जाये तो निश्चित तौर पर छोटे व सीमान्त किसानों का खेती से पुनः जुड़ाव स्थापित होगा और उनकी आजीविका में स्थाईत्व आयेगा। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए राज्य एवं राष्ट्रीय सरकारों द्वारा कृषि विभाग की मदद से वर्ष 2001 से जागरूकता के क्षेत्र में निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं।

जायद में जैव विधि से सब्ज़ियों की खेती

भारत वर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती है। हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं उनकी आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है, इसलिए इस प्रकार की सभी समस्याओं से निपटने के लिए गत वर्षों से निरन्तर टिकाऊ खेती के सिद्धान्त पर खेती करने की सिफारिशें की गई। प्रदेश के कृषि विभाग ने इस विशेष प्रकार की खेती को अपनाने के लिए बढ़ावा दिया जिसे हम जैविक खेती के नाम से जानते हैं। भारत सरकार भी इस खेती को अपनाने के लिए प्रचार–प्रसार कर रही है।

मध्य प्रदेश में सर्वप्रथम 2001–02 में जैविक खेती का आन्दोलन चलाकर प्रत्येक जिले के प्रत्येक विकास खण्ड के एक गांव में जैविक खेती प्रारम्भ की गई और इन गांवों को जैविक गांव का नाम दिया गया। इस प्रकार प्रथम वर्ष में कुल 313 ग्रामों में जैविक खेती की शुरूआत हुई। इसके बाद 2002–03 में द्वितीय वर्ष में प्रत्येक जिले के प्रत्येक विकासखण्ड के दो–दो गांव, वर्ष 2003–04 में 2–2 गांव अर्थात 1565 ग्रामों में जैविक खेती की गई। वर्ष 2006–07 में पुनः प्रत्येक विकासखण्ड में 5–5 गांव चयन किये गये। इस प्रकार प्रदेश के 3130 ग्रामों में जैविक खेती का कार्यक्रम किया जा रहा है। जैविक खेती को अपनाने हेतु किसानों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से मई 2002 में कृषि विभाग के तत्वाधान में भोपाल में जैविक खेती विषय पर सेमीनार आयोजित किया गया जिसमें राष्ट्रीय विशेषज्ञों एवं जैविक खेती करने वाले अनुभवी कृषकों द्वारा भाग लिया गया। प्रदेश के प्रत्येक जिले में जैविक खेती के प्रचार–प्रसार हेतु चलित झांकी, पोस्टर्स, बैनर्स, साहित्य, एकल नाटक, कठपुतली प्रदर्शन जैविक हाट एवं विशेषज्ञों द्वारा जैविक खेती पर चर्चा आदि के माध्यम से प्रसार–प्रसार करते हुए कृषकों में जन जाग्रति फैलाई जा रही है।

यहां मुख्य रूप से जायद की फसलों (मूंग, उरद, मक्का, कद्दू, खरबूजा, तरबूज, लौकी, तोरई, खीरा, मिर्च, टमाटर, सूरजमुखी) में जैव उर्वरकों का उपयोग एवं उससे होने वाले लाभों पर चर्चा की जा रही है–

ज़ायद की फसलों में जैव कल्चर का प्रयोग

जायद की फसलों में निम्न प्रकार के जैव कल्चरों का उपयोग किया जा सकता है –

1. **राइजोबियम कल्चर :** यह एक सहजीवी जीवाणु है जो पौधों की जड़ों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का

स्थिरीकरण करके उसे पौधों के लिए उपलब्ध कराती है। यह प्रायः दलहनी फसलों में प्रयोग किया जाता है यह फसल विशिष्ट होता है अर्थात अलग–अलग फसल के लिए अलग–अलग प्रकार का राइजोबियम जीवाणु खाद का प्रयोग होता है। राइजोबियम जीवाणु खाद से बीज उपचार करने पर ये जीवाणु खाद से बीज पर चिपक जाते हैं। बीज अंकुरण पर ये जीवाणु जड़ के मूलरोग द्वारा पौधों की जड़ों में प्रवेश कर जड़ों पर ग्रन्थियों का निर्माण करते हैं। इसके प्रयोग से दलहनी फसलों में प्रति वर्ष 40–130 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर का स्थरीकरण होता है।

2. **एजोटोबैक्टर कल्चर :** यह जीवाणु पौधों की जड़ क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से रहने वाले जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप उत्पाद है, जो वायुमंडल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं। इसके एक ग्राम में लगभग 10 करोड़ जीवाणु होते हैं। यह जीवाणु खाद दलहनी फसल को छोड़कर सभी फसलों में उपयोग की जा सकती है। इसके प्रयोग से 20–30 किग्रा0 नाइट्रोजन की बचत होती है तथा 10–15 प्रतिशत फसल उत्पादन में वृद्धि होती है।

3. **एजोसपाइरिलम कल्चर :** यह जीवाणु खाद भी मृदा में पौधों के जड़ क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से रहने वाले जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप उत्पाद होता है, जो वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। यह जीवाणु खाद धान, गन्ने, मिर्च प्याज आदि फसल हेतु विशेष उपयोगी है।

4. **फास्फेट कल्चर :** फास्फेट जीवाणु खाद, स्वतंत्र जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप में उत्पाद है। जब हम खेत में उपरोक्त कल्चर का प्रयोग करते हैं तो जमीन में पड़े हुए अघुलनशील फास्फोरस जीवाणुओं द्वारा घुलनशील अवस्था में बदल दिया जाता है तथा इसका प्रयोग सभी फसलों में किया जाता है। फास्फेट कल्चर के प्रयोग से फसलों में 10–12 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि पायी गई है। इसके प्रयोग करने से 20–25 किग्रा फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की बचत संभव है। इसके प्रयोग से जड़ों का विकास अधिक होता है जिससे पौधा स्वस्थ और मजबूत रहता है।

जैव उर्वरकों के उपयोग से लाभ

1. इसके प्रयोग से फसलों की पैदावार में वृद्धि होती है।
2. रासायनिक उर्वरक एवं विदेशी मुद्रा की बचत होती है।

जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि

क्र०	प्रयोग विधि	फसल	जैव उर्वरक मात्रा/एकड़
1.	बीजोपचार : आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की मात्रा को लगभग 1.5 लीटर पानी प्रति एकड़ बीज के ढेर पर धीरे-धीरे डालकर हाथों से तब तक मिलायें जब सरसों तक कि बीजों पर जैव उर्वरक की परत समान रूप से न चढ़ जायें। उपचारित बीज को छाया में रखें अथवा तुरन्त बोआई कर दें।	गेहूँ, ज्वार, मक्का, कपास, सूरजमुखी, सरसों	20 किग्रा ०
2.	पौध जड़ उपचार : आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की मात्रा को लगभग 4 लीटर पानी प्रति 1 किग्रा के हिसाब से किसी चौड़े मुँह वाले बर्तन में घोल बनायें, इसे घोल को पौधे की जड़ों को 2 से 3 मिनट तक डुबोकर पौध उपचार करें तथा फिर उपचारित पौधे की तुरन्त खेत में रोपाई कर दें।	धान, मिर्च, टमाटर, गोभी, बैंगन, प्याज आदि	1.5 किग्रा० से 2.0 किग्रा०
3.	कन्द उपचार: आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की मात्रा को 15 लीटर पानी प्रति 2 किग्रा० जैव उर्वरक के हिसाब से घोल बनाकर कन्द को 5 से 10 मिनट तक डुबायें रखें या जैव उर्वरक के घोल में कन्द पर समान रूप से छिड़काव करें तथा उपचारित कन्दों की तुरन्त बुआई कर दें।	फसलों के लिए (अर्थात् 6 माह से कम समय में पके वाली)	2.0 किग्रा० से 2.5 किग्रा०
4.	मृदा उपचार : आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक को 35 से 50 किग्रा० कम्पोस्ट खाद या भुरभुरी मिट्टी में मिश्रण बनाकर अन्तिम जुताई के समय अथवा फसल की पहली सिंचाई से एक एकड़ खेत में छिड़क कर मिट्टी में मिला दें।	लम्बी अवधि वाली फसलों के लिए	3.5 किग्रा०

टीकमगढ़ जिले के विकास खण्ड निवाड़ी के अन्तर्गत निवाड़ी गांव के रहने वाले 42 वर्षीय किसान हरदयाल के पास 4 एकड़ खेत है, जिस पर वे धान, गेंहूं की खेती मुख्य तौर पर करते थे। प्रदेश सरकार की जैविक खेती योजना से जुड़ाव के पश्चात् इन्होंने सब्ज़ियों की खेती करने का क्षेत्रफल बढ़ाया और जैविक विधि से सब्ज़ियों की खेती करने लगे। आज ये लगभग 100000–125000 रू0 की सब्जी सालाना बेच लेते हैं। इनका कहना है कि जैविक विधि से खेती करने से एक तरफ तो हमें अपनी उपज का बाजार में अच्छा दाम मिल जाता है तो दूसरी तरफ हमारे परिवार के सदस्यों को भी पौष्टिक भोजन मिल रहा है। अधिक क्षेत्रफल में सब्ज़ियों की खेती करने के पीछे इनका तर्क यह है कि धान, गेंहूँ की अपेक्षा जैविक सब्ज़ियों की मांग अधिक रहती है, क्योंकि रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग न करने के कारण सब्ज़ियों की गुणवत्ता बढ़ जाती है, स्वाद अच्छा रहता है, इसलिए लोग भी अच्छा भाव दे

3. ये हानिकारक या विषैले नहीं होते।
4. मृदा को लगभग 25.30 किग्रा0 /हे0 नाइट्रोजन एवं 15.20 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर फास्फोरस उपलब्ध कराना तथा मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में सुधार लाना।
5. इनके प्रयोग से उपज में वृद्धि के अतिरिक्त गन्ने में शर्करा की, तिलहनी फसलों में तेल की तथा मक्का एवं आलू में स्टार्च की मात्रा में बढ़ोतरी होती है।
6. विभिन्न फसलों में बीज उत्पादन कार्यक्रम द्वारा 15.20 प्रतिशत उपज में वृद्धि करना।
7. किसानों को आर्थिक लाभ होता है।
8. इनसे बीज उपचार करने से अंकुरण शीघ्र होता है तथा कल्लों की संख्या में वृद्धि होती है।
9. जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है।
10. भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है।
11. पौधों के विकास में सहायक हारमोन्स, विटामिन्स की मात्रा बढ़ती है।
12. बीज का अंकुरण, जड़ का विकास, पौधों का स्वास्थ्य अच्छा होता है।
13. पर्यावरण प्रदूषण भी कम होता है।

जैव उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियां

1. जैव उर्वरक प्रयोग करने के बाद उपचारित बीज को जमीन में बुवाई के उपरांत मिट्टी से ढक देना चाहिए।
2. जैव उर्वरक के प्रयोग के उपरांत मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी बनाये रखना चाहिए। इसके लिए मल्चिंग उप्युक्त विधि है।
3. जैव उर्वरक के अंदर बफरिंग क्षमता अधिक होती है जिससे मृदा का तापक्रम एवं पी.एच. को अनुरूप रखने में मदद करता है।
4. जैव उर्वरक को हमेशा धूप या गर्मी से बचा कर रखना चाहिए।
5. इनसे उपचारित बीज, कन्द, पौध, मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण छाया में ही रखना चाहिये।
6. इनके पैकेट पर लिखित अन्तिम तिथि से पहले उपयोग अवश्य कर लेना चाहिये।
7. राइजोबियम कल्चर प्रत्येक दाल वाली फसल का अलग–अलग होता है, अतः जिस फसल का कल्चर हो उसी दलहनी फसल के अनुसार प्रयोग करना चाहिए।
8. अन्य किसी दवाओं के साथ शोधन में इनका सबसे अंतिम में शोधन करना चाहिए।

उपसंहार

जैविक खेती से मानव स्वास्थ्य का बहुत गहरा सम्बन्ध है। इस पद्धति से खेती करने में शरीर तुलनात्मक रूप से अधिक स्वस्थ रहता है। औसत आयु भी बढ़ती है। हमारी आने वाली पीढ़ी भी अधिक स्वास्थ्य रहेगी। कीटनाशक और अकार्बनिक खाद का प्रयोग खेती में करने से फसल में जहरीला असर पड़ता है। जैविक खेती करने से फसल स्वस्थ होती है और जल्दी खराब नहीं होती है। अतः इस प्रकार के प्रयासों को और बड़े पैमाने पर प्रसारित करने तथा जैविक खेती को विभिन्न माध्यमों से प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

■

डा० अतीक अहमद
विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
कृषि विज्ञान केन्द्र, भरारी, झांसी
ई–मेल :atikkvkjhansi@gmail.com

डा० अरबिंद कुमार गुप्ता
सहायक प्रोफेसर (मृदा विज्ञान)
वानिकी विभाग बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा

डा० देव कुमार
सहायक प्रोफेसर (मृदा विज्ञान)
कृषि विभाग बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा

श्री अंशुमान श्रीवास्तव
शोध छात्र, चन्द्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय,
कानपुर

श्री शिव बहादुर
कार्यक्रम सहायक, कृषि विज्ञान केन्द्र,
भरारी, झांसी

कीचड़ में केकड़ा की खेती
एक अनुकूलन रणनीति

कृष्ण चन्द्र साहू

ओडिशा के तटीय गांव जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाली प्राकृतिक आपदाओं से अत्यधिक संवेदनशील हैं। विशेषकर कृषि एवं उससे जुड़े क्षेत्रों में कार्य करने वाले स्थानीय लोगों की आजीविका गम्भीर रूप से प्रभावित हो रही है। धारा और आईजीएसएसएस के निर्देशन में ओडिशा के केन्द्रापदा जिले के राजनगर विकासखण्ड के तटीय क्षेत्रों में रहने वाले ग्रामवासी जलवायु परिवर्तन और आपदा जोखिमों के सन्दर्भ में आजीविका के विकल्पों के तौर पर कीचड़ में केकड़ा की खेती करने लगे हैं।

फोटो : लेखक

घर के पिछवाड़े खारे पानी में केकड़ा पालन

स्थानीय जलवायु में तेजी से होने वाले उतार–चढ़ाव के कारण बंगाल की खाड़ी के सन्निकट रहने वाले परिवारों की आजीविका सम्बन्धी गतिविधियां दिन–प्रतिदिन गम्भीर रूप से प्रभावित होती जा रही हैं। स्थानीय जलवायु में अनिश्चितता एवं बदलाव के चलते खेती तथा समुद्र के मुहाने पर छोटे–संकरे कीचड़युक्त क्षेत्र में मछली पालन पर निर्भर करने वाले लोगों की आजीविका में अनिश्चितता बढ़ती जा रही है। उपज एवं आमदनी में गिरावट यहां की नियमित विशेषता बन गयी है। इससे यहां की आजीविका का एकल स्रोत अत्यधिक संवेदनशील हो गया है। बदलती जलवायुविक परिस्थितियों में आजीविका के अन्य विकल्पों को विकसित करने तथा बढ़ाने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में पारिस्थितिक–सांस्कृतिक शोध एवं संवाद के उपर सघन रूप से काम करने वाली संस्था धारा ने आईजीएसएस के साथ मिलकर आजीविका के विकल्पों पर विचार किया और पांच सीमान्त परिवारों के साथ उनके घर के निकट स्थित खारे पानी के जलस्रोतों में बांस की छोटे–छोटे जालीदार ढांचे बनाकर उनमें कीचड़ में केकड़ा की खेती करना प्रारम्भ किया।

तटीय क्षेत्रों की विशिष्ट विशेषता के तौर पर, इन क्षेत्रों में खारे पानी के जलस्रोत घरों के निकट उपलब्ध होते हैं। समुद्र में तूफान/चक्रवात आना इस क्षेत्र की एक नियमित विशेषता होती है और इस कारण ताजे पानी के जलस्रोत

केकड़ों का वजन बढ़ाने के लिए कीचड़युक्त मछली का भोजन

भी कभी–कभी अस्थाई तौर पर खारे हो जाते हैं। खारा पानी सिंचाई के लिए अनुपयुक्त होता है। खारा पानी युक्त इन उथले जलस्रोतों में व्यवसायिक तौर पर झींगा पालन के अलावा किसानों के लिए और कोई उपयोग नहीं होता।

केकड़ा इस क्षेत्र में खाया जाने वाला एक मुख्य पदार्थ और यहां तक कि गैर तटीय क्षेत्रों में भी इसे पाया जाता है और लोग चाव से खाते हैं। इसलिए आजीविका के वैकल्पिक स्रोत के तौर पर इसकी खेती करने के ऊपर विचार किया गया। इसके अतिरिक्त चूंकि क्षेत्र के मैंग्रोव्ज एवं

तालिका 1 : कीचड़ में केकड़ा पालन से होने वाली आमदनी

क्र०	सामग्री	टिप्पणी	लागत (रू० में)
1.	प्रारम्भिक निवेश लागत		
अ.	बांस का ढ़ांचा तैयार करना	6 फीट × 4 फीट × 2.5 फीट का ढ़ांचा तैयार करने हेतु बांस के पांच टुकड़े, रस्सी एवं पांच मानव दिवस लगे। इसमें परिवहन लागत भी शामिल है।	2685.00
ब.	औजार एवं टोकरी (चिमटा, झूडी आदि)		300.00
	कुल प्रारम्भिक लागत	3 वर्षों में 24 बार के लिए उपयोग किया गया।	2985.00
1.	एक बैच के लिए निवेश	रू० 2985/24	125.00
2.	बच्चा केकड़ा	150 ग्राम- 180 ग्राम/प्रति केकड़ा = 8 किग्रा 238 रू० प्रति किग्रा की दर से 8 किग्रा० × 238.00	1904.00
3.	प्रति 15 दिन की खाने की लागत	15 दिनों के लिए- अनुमानित- स्वयं से	150.00
4.	श्रम लागत	सुबह-शाम खिलाने के लिए लगभग 15 मिनट यदि कुछ कचरा हो तो उसकी साफ-सफाई/ दिन × 15 दिन = एक दिन	300.00
II	प्रत्येक बैच की लागत		2479.00
III	कुल वापसी	8 किग्रा रु० प्रति किग्रा० 500/-की दर से बेचा	4000.00
IV	प्रति बैच में शुद्ध वापसी	रु० 4000-रु० 2479 = रु० 1521.00 (प्रत्येक 15 दिन में एक बैच)	1521.00
V	प्रत्येक सीजन में शुद्ध वापसी	प्रति बैच में न्यूनतम 8 बैच होते हैं।	12168.00

मोटा लगड़ा केकड़ा—बाजार के लिए तैयार

कीचड़युक्त छोटे संकरे क्षेत्र केकड़ा के जन्मस्थान भी होते हैं, जहां वे वास्तव में पनपते हैं। खुले जलस्रोत में केकड़ा का पालन एक लम्बे निवेश का काम होता है। इन तथ्यों पर विचार करते हुए, टीम ने समुदाय के साथ बैठक कर केकड़ा पालन की पद्धति एवं अनुमानित लागत पर सघन काम किया। परिवारों की सामाजिक—आर्थिक स्थिति, पेशा एवं रूचि के आधार पर पांच अति जरूरतमन्द परिवारों का चयन किया गया। चयन का यह कार्य समुदाय ने स्वयं किया। इन मछली पालकों को सघन प्रशिक्षण भी दिया गया। केकड़ों को रोकने के लिए न्यूनतम निवेश कर बांस के ढांचों को लिया गया। इसके अलावा स्थानीय तौर पर कारीगर भी होते हैं जो बांस के इन जालीदार ढांचों को तैयार कर सकते हैं। सितम्बर के अन्त से लेकर मार्च के दौरान 150—180 ग्राम के केंचुओं को लाकर इस ढांचे में छोड़ देते हैं। दो सप्ताह तक उन्हें मछलियों द्वारा छोड़े गये कचरे को खिलाया जाता है। इन दो सप्ताह में ये केकड़े अपेक्षाकृत काफी मोटे व बड़े हो जाते हैं।

चार महीनों की अवधि में केकड़ा पालन से प्रति परिवार को औसतन रू0 3500 से 4500.00 के बीच शुद्ध आमदनी होती है। एक सीजन में ये मछलीपालक रू0 12000.00 से अधिक की आमदनी अर्जित करते हैं (देखें तालिका सं0 1)। विभिन्न जलवायुविक चरम घटनाओं के कारण आमदनी में निरन्तर गिरावट को झेल रहे सीमान्त किसानों के लिए यह एक उल्लेखनीय अतिरिक्त आमदनी है।

■

कृष्ण चन्द्र साहू
आजीविका प्रमुख
आई०जी०एस०एस०
118, गरफा मुख्य मार्ग
कोलकाता- 700075, पश्चिम बंगाल
ई-मेल :sahu@igsss.net

Climate Change and Ecological approaches
LEISA INDIA, Vol. 19, No.2, June 2017

स्थानीय समुदाय, पशुधन और आजीविका

अमनदीप सिंह एवं प्रणव कुमार

हिमालयी क्षेत्र में रहने वाली पारम्परिक बकरवाल समुदायों की आजीविका मुख्य तौर पर बकरियों पर निर्भर करती है। उनके द्वारा किये गये बकरी पालन अभ्यास न केवल उनकी आजीविका को स्थाई बनाती है, वरन् वे अपने आस-पास की पारिस्थितिकी को भी स्थाईत्व प्रदान कर रहे हैं। समय बदलने के साथ, ये स्थानीय समुदाय अपने आप को समय के साथ बदल रहे हैं और बदलती परिस्थितियों के हिसाब से यथोचित तकनीक को अपना रहे हैं।

बकरवाल बकरी पालन से अपनी आजीविका चलाते हैं।

बकरवाल मुख्य रूप से खानाबदोश चरवाहा समुदाय है, जो गर्मियों के दौरान ग्रेटर हिमालय की ऊँची पहाड़ियों पर तथा सर्दियों में मैदानी इलाका व शिवालिक की घाटियों में भेड़–बकरी पालन का कार्य करते हैं। ये विशिष्ट खानाबदोश चरवाहा समुदाय से हैं, जो मुख्य तौर पर दो राज्यों– जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों के बीच पिरपंजल रेंज में पाये जाते हैं। बकरवाल समुदाय के लोग बकरी पालन से ही अपना जीवन यापन करते हैं और यह अभ्यास उनकी लोककथाओं एवं संस्कृति में गहरे तक रचा–बसा है। बकरवाल समुदाय के लोग छोटे जुगाली करने वाले जानवरों के पालन की इस कला को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित करते हैं और लोगों को इस विधा से जुड़ने के लिए उत्प्रेरित करते हैं। बकरवाल नाम के बारे में भी यह एक प्रचलित धारणा है। उनकी आजविका मुख्य रूप से बकरियों के बच्चे को बेचने, शिवन्, फाइबर, खाल, बकरी के दूध तथा दूध से बने एक विशिष्ट उत्पाद ''कलादिस'' पर निर्भर करती है।

बकरवाल समुदाय का कोई स्थाई ठिकाना नहीं होता है और वे पूरे वर्ष भर घूमते रहते हैं। वे ऊँची पहाड़ियों पर रहते हैं और इस क्षेत्र में प्राकृतिक तौर से उगे घासों तथा चारागाहों की प्रचुरता के कारण मुख्य तौर पर पशु पालन का काम करते हैं। बकरवाल लोग अपनी वर्ष भर की गतिविधियों को चार प्रमुख ऋतुओं– जाड़ा, बसन्त, गर्मी एवं शरद के हिसाब से तय करते हैं। वे दिसम्बर से मध्य अप्रैल तक बाहरी पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में बकरियों एवं भेड़ों के झुण्ड के साथ ग्रेटर हिमालय की अल्पाइन चारागाहों की तरफ पलायन कर जाते हैं और वहां पर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक रहते हैं। इस दौरान वे विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों से गुजरते हैं और वहां की स्थिति एवं पर्यावरण के हिसाब से अपनी दिनचर्या को नियन्त्रित करते हैं। वे पुनः उन्हीं रास्तों से अक्टूबर माह में वापस लौटना प्रारम्भ कर देते हैं और प्रत्येक वर्ष के नवम्बर माह तक पुनः बाहरी पहाड़ी क्षेत्रों पर पहुंच जाते हैं।

बकरियां एवं पारिस्थितिकी

पारिस्थितिकी संतुलन को बनाये रखने में बकरियां सर्वाधिक सहायक होती हैं। बकरियां बहुत सी हानिकारक घासों को खाकर उन्हें बढ़त को रोकती हैं और इसका उनके शरीर पर कोई दुष्प्रभाव भी नहीं पड़ता है। ये वनस्पतियों को चरती हैं, चराई के दौरान उन्हें अपने पैरों से रौंदती हैं, जिससे मृदा के अन्दर जल का प्रवेश होता है साथ ही मृदा का क्षरण भी रूकता है। बकरियों की खोजपूर्ण आदतों के कारण वन्य जीवों का विकास भी होता है। अर्थात् वे जमीन के ऊपरी सतह पर उगने वाली छोटी–छोटी घासों एवं झाड़ियों को खाती हैं, जिससे वन्य

> **बाढ़ के कारण चारागाहों की कमी तथा खेती योग्य भूमियों का आवास हेतु अत्यधिक उपयोग करने के कारण पशुओं के लिए प्रभावी चराई क्षेत्र दिनोंदिन घटते जा रहे हैं।**

क्षेत्रों में जंगली जड़ी–बूटियों का संरक्षण होता है। इसके अतिरिक्त बकरियों के एक झुण्ड के लिए एक क्षेत्र निर्धारित होता है और वे उसी स्थान पर घूम–घूमकर घास खाती व मल त्याग करती रहती हैं, जिससे वह क्षेत्र उर्वरता की दृष्टि से काफी समृद्ध हो जाता है। इसी के साथ ही औषधीय जड़ी–बूटियों के बीजों का प्रसार उनके मल के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक होता है, जिससे प्राकृतिक चारागाहों के विकसित होने में सहायता मिलती है।

बदलती स्थितियों में बकरवाल

हालांकि अधिकांश समुदाय मौसमी पलायन करते हैं और घूमन्तु जाति के रूप में प्रचलित हैं। लेकिन अब बकरवाल भी उपनगरों और गांवों के आस–पास स्थायी निवास बनाकर रहने लगे हैं। वे अब राज्य के विभागों के साथ सम्पर्क कर पशुपालन की आधुनिक तकनीकों को सीख रहे हैं। जम्मू एवं कश्मीर दोनों डिवीजनों के भेड़ पालन विभाग ने बकरवालों के पास पहले से मौजूद भेड़ों के साथ संकर प्रजनन कराने हेतु ऋण देना प्रारम्भ कर दिया है, जिससे इनकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो रही है। वे अब उनके दूध, रेशा एवं चमड़ों को बेचकर अच्छा दाम प्राप्त कर रहे हैं। साक्षरता बढ़ने के साथ, इस समुदाय के युवा बकरी पालन करना छोड़कर सरकारी एवं निजी क्षेत्रों में नौकरियां चुन रहे हैं। इससे एक तरफ तो राज्य में बकरियों की संख्या कम होती जा रही है, तो दूसरी तरफ बकरवाल जनजाति की सांस्कृतिक धरोहर एवं मूल्य भी खोते जा रहे हैं। इन्हें ध्यान में रखते हुए, राज्य कृषि विश्वविद्यालय बकरवाल समुदाय के युवा वर्ग के लिए औद्योगिक विकास कार्यक्रमों का आयोजन कर रही है ताकि ये बड़े पैमाने पर बकरी पालन करने हेतु उत्साहित हो सकें।

बाढ़ के कारण चारागाहों की कमी तथा खेती योग्य भूमियों का आवास हेतु अत्यधिक उपयोग करने के कारण पशुओं के लिए प्रभावी चराई क्षेत्र दिनोंदिन घटते जा रहे हैं। इससे समुदाय के लोग बाध्य होकर अपने पशुओं को या तो दुकान पर ले जाकर चारा खिलाते हैं अथवा ऊँचाई पर स्थित चारागाहों तक ले जाने के लिए बाध्य होते हैं। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन के कारण इनमें नयी–नयी बीमारियां भी विकसित हो रही हैं। फिर भी, भेड़ पालन विभाग के सहयोग से बकरियों का टीकाकरण एवं कीड़े मारने की दवा नियमित रूप से दी जा रही है, जिससे उन्हें बहुत सी बीमारियों से बचाया जा रहा है।

निष्कर्ष

बकरियां एक तरफ तो प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और दूसरी तरफ नियमित रूप से उच्च गुणवत्ता वाले खाद्य एवं फाइबर का उत्पादन करती हैं। उन्हें यदि समुचित तरीके से प्रबन्धित किया जाये तो हानिकर घासों को नियन्त्रित करने, चारागाह भूमियों एवं पुनर्वनीकरण कार्यक्रमों को बढ़ाने, वन्यजीवों को विकसित करने वाटरशेड प्रबन्धन उद्देश्यों को पूरा करने हेतु ये छोटे जीव प्रभावी उपकरण के तौर पर दिख सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वे इन सबको एक व्यवस्थित तरीके से करते हुए न सिर्फ स्थाई वरन् लाभप्रद भी बना सकती हैं। ■

अमनदीप सिंह
अन्तिम वर्ष छात्र, बी०वी०एससी० एवं ए०एच०
ई–मेल : amandeepsinghvet@gmail.com

प्रणव कुमार
सहायक प्रोफेसर, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन प्रसार शिक्षा
ई–मेल :pranvahe@gmail.com

पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन संकाय
शेर–ए–कश्मीर कृषि विज्ञान एवं तकनीक जम्मू विश्वविद्यालय,
आर०एस० पुरा, जम्मू
जम्मू एवं कश्मीर, भारत– 181102

Ecological Livestock
LEISA INDIA, Vol 19, No.3, Sept 2017

अनुपयोगी घासों व झाड़ियों को चरती बकरियां

कम पानी का उपयोग करते हुए श्री पद्धति से धान की रोपाई करती किसान

फसल नियोजन

जलवायु संवेदी खाद्य प्रणाली हेतु एक उपकरण

अनुराधा फदतारे

स्थान विशेष के ऊपर फसलों की उपज की अत्यधिक निर्भरता होती है। इसके साथ ही अन्य विभिन्न कारक जैसे जलवायु, प्राकृतिक संसाधन, निवेशों तक पहुंच, जानकारी आदि भी फसलों की उपज को प्रमुख रूप से प्रभावित करते हैं। जलवायु संवेदी खाद्य प्रणाली तैयार करने हेतु प्रक्षेत्र स्तर पर फसल नियोजन एक दीर्घकालिक तरीका है। अपनी फसल उत्पादनों का नियोजन करते हुए महाराष्ट्र के किसान अच्छी फसल लेने में सक्षम हो रहे हैं जिससे वे अपनी खाद्य एवं पोषण आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

गनेशवाडी महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले में स्थित ग्राम पंचायत घोटी का एक टोला है, जिसमें कुल 15 परिवार निवास करते हैं। यहां के किसान बहुत ही गरीब हैं और उनके पास बहुत थोड़ी मात्रा में जमीनें हैं। नदी के पानी तक इनकी पहुंच होने के कारण गनेशवाडी के किसान खरीफ ऋतु में धान और रबी ऋतु में गेंहूं की खेती करते हैं। कुछ किसान गर्मियों में मूंगफली भी उगाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में, किसानों ने यह अनुभव किया है कि देर से मानसून आने, बसंत ऋतु में तापमान में कमी आने तथा अनियमित एवं बेमौसम बरसात होने के कारण फसलों का नुकसान हो रहा है। जिससे खाद्य उपलब्धता प्रभावित हो रही है। साथ ही सिर्फ 2–3 फसलों पर ही निर्भरता बढ़ जाने के कारण भोजन की विविधता भी घटी है और परिवार का पोषण स्तर भी प्रभावित हुआ है।

इस सन्दर्भ में वाटरशेड आर्गेनाइजेशन ट्रस्ट (डब्ल्यू ओ टी आर) ने बदलती जलवायुविक परिस्थितियों में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में वृद्धि करने में लोगों की सहायता करने हेतु इस गांव में काम करना प्रारम्भ किया। इसका मुख्य उद्देश्य फसल नियोजन में किसानों की सहायता करने

अन्तःफसल की तकनीक को अपनाकर किसान एक तरफ तो अच्छी उपज प्राप्त कर रहे हैं तो दूसरी तरफ उन्हें अपने उपयोग हेतु विभिन्न प्रकार के भोजन की उपलब्धता भी हो रही है।

के साथ ही अनाज, दलहन, सब्ज़ियों आदि की खेती करते हुए फसल विविधता को भी बढ़ावा देना था ताकि परिवारों की पोषण सुरक्षा उन्नत हो सके।

योजना को सीखना

गांव स्तर पर जागरूकता बैठकों का आयोजन कर सभी लोगों को इस पूरी प्रक्रिया के बारे में विस्तार से बताया गया। समुदाय के बीच विभिन्न विषयों जैसे कृषि, पोषण, जल नियोजन, जैविक खेती, खाद बनाना एवं श्री विधि आदि पर सघन जागरूकता अभियान चलाया गया। कृषि विशेषज्ञों के सहयोग से किसानों ने खरीफ और रबी ऋतु के लिए फसल नियोजन किया। यह नियोजन गत वर्ष के कृषिगत आंकड़ों तथा आने वाले कृषि ऋतु के लिए स्थानीय मौसम स्थितियों को ध्यान में रखकर किया गया। इस नियोजन का मुख्य उद्देश्य फसल विविधता को बढ़ावा देना था।

समुदाय को प्रत्येक फसल के पोषण महत्व के बारे में भी जागरूक किया गया। प्रत्येक परिवार के लिए उपयुक्त फसलों पर चर्चा की गयी साथ ही उन फसलों के पोषण मूल्यों को भी बताया गया। फसल मानचित्रीकरण, नियोजन एवं विशिष्ट प्रक्षेत्र को खोजने के लिए जीआईएस एवं रिमोट सेन्सिंग उपकरण का उपयोग किया गया। प्रक्षेत्रवार सूचनाएं प्रत्येक किसान के साथ साझा की गयीं। प्रत्येक परिवार स्तर पर फसल एवं प्रक्षेत्र का नक्शा तैयार किया गया। प्रक्षेत्रवार फसल नियोजन करने के पश्चात् पूर्ववर्ती बोयी गयी फसलों के तथा प्रत्येक अगली फसलों के पोषक मूल्यों को शामिल करते हुए इन फसल नियोजन मानचित्रों के ऊपर आई.ई.सी. सामग्रियां भी तैयार की गयीं। जल नियोजन की अवधारणा के ऊपर समुदाय को विस्तार से समझाया गया। रबी एवं जायद ऋतु में उपयोग करने हेतु खरीफ ऋतु में जल की उपलब्धता तथा सिंचाई पद्धतियों का नियोजन किया गया।

कुछ परिणाम

चयनित गांव में परम्परागत रूप से एकल खेती का प्रचलन था और धान यहां की मुख्य फसल थी। यदा–कदा लोग कुछ सब्ज़ियां एवं गेंहूं भी लगाते थे। फसल नियोजन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के बाद, लोगों ने धान, बाजरा, मटर, मूंगफली, आलू, सेम, टमाटर, गेंहूं, ओकरा आदि बहुत सी फसलों को लगाना प्रारम्भ कर दिया। गांव की कुल खेती के लगभग 83 प्रतिशत क्षेत्र पर चावल के साथ–साथ मूंगफली, सेम एवं टमाटर की खेती की गयी। जबकि लगभग 31 प्रतिशत प्रक्षेत्र पर बाजरा उगाया गया। 34 प्रतिशत खेत पर सोयाबीन, सब्ज़ियां एवं सेम की खेती की गयी जबकि 35 प्रतिशत खेत में कई प्रकार की फसलें उगाई गयीं। फसल विविधता स्थलाकृति, मिट्टी के प्रकार, खाने की आदतों व पोषण आवश्यकता पर आधारित थीं।

गांव के अधिकांश किसानों ने खेती की अन्तरवर्ती फसल पद्धति को अपना लिया है। लगभग 50 प्रतिशत टमाटर एवं अन्य विभिन्न फसलों के साथ अन्तरवर्ती फसल के रूप में गेंदे के फूल की खेती करने लगे हैं। परिणामतः टमाटर की उपज में 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। कुछ किसानों ने देशी

एक गांव में बैठक का आयोजन

फोटो : लेखक

फोटो : लेखक

धान की परम्परागत बीजों का इस्तेमाल कर श्री विधि से रोपाई करते बहुत से किसान

तालिका 1 :

किसानों के भोजन में शामिल खाद्य पदार्थों की सूची

खाद्य समूह	खाद्य सामग्री
अनाज एवं उनके उत्पाद	ज्वार, बाजरा, गेहूँ, चावल, बजरी
दलहन और फलियाँ	राजमा, मूंग, मटर, अरहर
दूध एवं मांस उत्पाद	गाय का दूध और बकरी का दूध
फल एवं सब्ज़ियां	सेब, अनार, केला
अन्य सब्ज़िया	बैंगन, कद्दू, सेम
तिलहन	मूंगफली

सेम के साथ अन्तः फसल के तौर पर परास बीन (झोपेदार सेम) की खेती की। अन्तःफसल की तकनीक को अपनाकर किसान एक तरफ तो अच्छी उपज प्राप्त कर रहे हैं तो दूसरी तरफ उन्हें अपने उपयोग हेतु विभिन्न प्रकार के भोजन की उपलब्धता भी हो रही है। श्री विधि के ऊपर प्रदर्शन का आयोजन किया गया और लगभग 70 प्रतिशत किसानों ने श्री विधि को अपनाया और अच्छी उपज प्राप्त की। सबसे दिलचस्प तो यह रहा कि श्री विधि से खेती करने के दौरान बहुत से किसानों ने धान की देशी प्रजाति और घर पर बनी खाद का उपयोग किया।

खाद्य विविधता में वृद्धि

एक ऋतु की फसल की कटाई के बाद पुनः आहार को याद करने हेतु एक बैठक आयोजित की गयी। इस बैठक में लोगों की बातों से स्पष्ट था कि अब सब्ज़ियां, अनाज, दालें और फल उनके भोजन का हिस्सा बन चुके हैं और किसानों के भोजन की विविधता बढ़ गयी है (देखें तालिका 1)।

निष्कर्ष

एकल खेती से विविधीकृत खेती प्रणाली की ओर यह बदलाव सुखद है और किसानों की भागीदारी तथा आगे बढ़कर पहल करने के कारण ही यह बदलाव संभव हो सका है। यद्यपि कि संस्था ने बदलती जलवायुविक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए फसल नियोजन करने में किसानों की सहायता की, परन्तु यह लोगों की रूचि एवं विश्वास ही था, जिसके बलबूते वे इस बदलाव की शुरूआत कर सके। गांव के एक किसान ने कहा भी कि ''हमने कभी भी इस तरह नियोजन करके खेती नहीं की थी।''

फसल नियोजन और एवं फसल विविधता बढ़ाने से होने वाले फायदों का अनुभव करने के बाद अब किसान यह मानने लगे हैं कि जलवायु संवेदी खाद्य प्रणाली तैयार करने हेतु फसल नियोजन एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसकी महत्ता को देखते हुए वे निरन्तर इसी दिशा में कार्य कर रहे हैं अर्थात् अब वे जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए फसल नियोजन करते हैं और उसी के अनुरूप फसलों का चयन भी करते हैं।

■

अनुराधा फदतारे
वाटरशेड आर्गेनाइजेशन ट्रस्ट
''द फोरम'', द्वितीय तल, पदमावती कार्नर
पूरा–सतारा रोड, पूना– 411 009
ई–मेल :anuradha.phadtare@wotr.org.in

Climate Change and Ecological approaches
LEISA INDIA, Vol 19, No.2, June. 2017